ISSN 2321 - 5704

भाषा भारती

राजभाषा उन्नयन की वार्षिक पत्रिका

अंक 7, वर्ष 7, फरवरी 2020

राजभाषा प्रकोष्ठ
डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय
सागर (मध्यप्रदेश)

Scanned by CamScanner

भाषा चिंतन

अँग्रेजी के सामने हिन्दी : रावण रथी विरथ रघुवीरा 62
जयकुमार जलज

राष्ट्र के पुनरुत्थान में भारतीय भाषाओं और साहित्य का योगदान 70
बलवन्त जानी

साहित्यिक भाषा और कार्यालयीन भाषा 73
गोपाल शर्मा

रवीन्द्रनाथ और हिन्दी 84
विनय मोहन शर्मा

वैज्ञानिक एवं तकनीकी सामग्री का अनुवाद 87
छबिल कुमार मेहेर

महादेवी के विचार-सिद्धान्त 99
किरण वट्टी

अवनद्य वाद्यों के वर्णों का भाषाई महत्त्व 103
राहुल स्वर्णकार

विमर्श

एक स्त्री-लेखक की तरह विकसित होते हुए 111
राजी सेठ

कैसी हो हमारी शिक्षा? 118
ज्योत्स्ना मिलन

किसने कहा था? ('उसने कहा था' के विशेष सन्दर्भ में) 123
कान्तिकुमार जैन

बुद्ध और अम्बेडकर का समत्व-भाव 128
सविता गुप्ता

Scanned by CamScanner

अवनद्य वाद्यों के वर्णों का भाषाई महत्त्व और विश्लेषण

–राहुल स्वर्णकार

"वर्ण" या पटाक्षर का अर्थ है अवनद्य वाद्यों पर प्रयोग होने वाली ध्वनि जिनकी ध्वनि को शास्त्रकारों ने अपनी कल्पना अनुसार एक भाषा प्रदान कर स्वर और व्यंजन के सम्मिलित रूप में निर्धारित किया है। सामान्यतः वाद्यों पर निकलने वाली ध्वनियों को मनुष्य की वाणी में तथा मनुष्य की वाणी को वाद्यों पर हूबहू नहीं निकला जा सकता। अतः इन वाद्यों से उत्पन्न ध्वनियों को नामांकित कर उन्हें पाटवर्ण, पटाक्षर या हस्त पाट भी कहा जाता है। वास्तव मे इन शब्दों का सृजन विद्यार्थियों को सहज रीती से तालाभ्यास कराने के उद्देश्य से किया गया है। वाद्यों पर प्रायोगिक प्रदर्शन से पहले इन पाट वर्णों का मौखिक अभ्यास पारम्परिक शिक्षा पद्धति में विद्यार्थियों को कराया जाता था। पढ़ंत एवं उच्चारण में उन्नत हो जाने के पश्चात् वादन के लिए उपयोगी इन पाट वर्णों को अवनद्य वाद्यों पर बजाने की प्रथा प्रचार में थी।[1]

उत्तर भारतीय संगीत के अवनद्य वाद्य पखावज के वर्ण निम्न प्रकार हैं–

मुख्य वर्ण - ता दीं न ते टे ग (घ) क

दाएँ भाग पर - ता दीं न ते टे

बाएँ भाग पर - ग (घ) क

इन सभी वर्णों से समस्त प्रकार के बोलों की उत्पत्ति की गई है।

पखावज के ही वर्णों से तबले के कुल 10 वर्ण निर्मित किये गए हैं–

"तबले के दस वर्ण हैं गुनिजन कहत बखान ।
बाजत छः दाएँ दो बाएँ दो मिश्रित कर जान ।।
दाएँ पर दीं ता तिट तू ना बाएँ क ग मान ।
धा धिन बजत न एक हाँथ दोनों लगत समान।। [2]

भारतीय शास्त्रीय संगीत और साहित्य में वर्णों का एक विशेष स्थान है। जिसके तहत नाना प्रकार की ध्वनियों के द्वारा विभिन्न विषयों की भाषा के रूप में उनका विकास एवं विस्तार संभव हुआ है। प्राचीन संगीत प्रणाली में भी वर्ण शब्द का प्रचुरता के साथ प्रयोग हुआ है। सामान्यतः वर्ण शब्द किसी भी सांगीतिक ध्वनि को गाने या बजाने से उत्पन्न भाव तथा भाषा के लिए प्रयोग होता है किन्तु जैसा की संगीत रत्नाकर में कहा गया है की "गायन वादन नृत्यम्

Scanned by CamScanner

त्रयम् संगीत मुच्यते'' अर्थात् गायन, वादन व नृत्य का सम्मिलित रूप ही संगीत कहा जा सकता है। अतः तीनों विधाओं में प्रचलित भाषा का अपना साहित्य और बंदिशों का स्थान शास्त्रों के आधार पर निर्धारित किया गया है। इन सभी विधाओं में वर्णों का स्थान भी निर्धारित है, किन्तु ध्वनि शास्त्र के अधार पर इन वर्णों को बंदिशों के माध्यम से प्रदर्शित किया जाता है। सामान्यतः ''गाने बजाने की की प्रत्यक्ष क्रिया को वर्ण कहा गया है।'' गायन विधा में स्वरों को आलाप आदि क्रियाओं के द्वारा जब क्रियात्मक रूप से रखा जाता है तो वह वर्ण क्रिया है और वह राग की अवधारणा संभव होती है।[3]

अवनद्य वाद्यों के पाट वर्णों के द्वारा मात्राओं और मात्राओं से छन्द की उत्पत्ति होती है, यही छन्द तालों का जनक माना जाता है। डॉ. अरुण कुमार सेन के अनुसार उनकी पुस्तक 'भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचन' में साहित्य में छन्द और संगीत में ताल का समावेश स्वाभाविक रूप से हुआ होगा। छन्द और ताल में कई तरह की समानताएँ भी देखी जा सकती हैं, जैसे–मात्राओं (संगीत की सबसे छोटी इकाई) और विभागादी की परस्पर गणना।[4] अवनद्य वाद्यों पर वादनीय पटाक्षर एक मात्रिक से प्रारंभ होकर आवश्यकतानुसार प्रयोग किये जाते हैं।

एक मात्रिक – धा
दो मात्रिक – धागे तिट धाती धीना आदि
तीन मात्रिक – धगेन, धेतक, धात्रक, धिकिट धतिट
चार मात्रिक – धातिधागे, धिनगिन धागेतिट, गदिगन, तिरकिट आदि
पाँच मात्रिक – धातिधागेन, धातिधातिट, घेनधागेन, आदि
छः मात्रिक – तिनतिनाकिन, धागेतिनकिन, धागेतिरकिट आदि

आगे आने वाले वर्णों को दो, तीन, चार आदि मात्राओं को जोड़कर निर्मित किया जा सकता है, किन्तु यह पद्धति प्राचीन मार्गी एवं देशी संगीत के लिए ही उपर्युक्त थी। इनका लोप होने के बाद वर्तमान प्रचलित संगीत शैलियों में बोलों को जातियों के आधार पर चयनित किया एवं पहचाना जाता है। इनकी संख्या पाँच है। त्रयस्त्र (तीन मात्रिक), चतुरस्त्र (चार मात्रिक), खंड (पाँच मात्रिक), मिश्र (सात मात्रिक), संकीर्ण (नौ मात्रिक)। मुख्यतः इन्हीं पाँच जातियों पर आधारित वर्तमान संगीत के समस्त बोल, वर्ण, पटाक्षर आदि आश्रित हैं। सर्वप्रथम आचार्य भरत ने नाट्यशास्त्र में त्रयस्त्र (तीन मात्रिक), चतुरस्त्र (चार मात्रिक) जातियों का उल्लेख किया है, जिनमें वर्तमान सदृश्य तीन और चार मात्राओं के वर्णों का अस्तित्व मिलता है।[5]

कखगघटठडढतथदधमरलह इति षोडशाक्षराणी ह (स्युरू) ।
नियंत पुष्करवाद्ये वाक्करणे संविधेयानि'' ।।[6]

नाट्यशास्त्र में पुष्कर वाद्यों के सन्दर्भ में मृदंग, पणव, दर्दुर, आदि वाद्यों के लिए 16 पाट वर्ण निर्धारित किये हैं - क, ख, ग, घ, ट, ठ, ड, ढ, त, थ, द, ध, म, र, ल, ह का वर्णन किया है।[7] 13 वीं सदी में पंडित शारंगदेव ने संगीत रत्नाकर के अध्याय छः में अवनद्य के बारे

Scanned by CamScanner

में दो प्रकार के पटह (मार्गी, देशी) का उल्लेख किया है। इनके वर्णों को पाट या हस्तपाट कहा गया है जिनकी संख्या सात है।[8]

13 वीं शताब्दी के प्रसिद्ध ग्रन्थ संगीतोपनिषत्सारोद्धार में आचार्य सुधाकलश में पखावज, ढोल (ढोलक), स्कंधावज आदि वाद्यों का उल्लेख किया है। अतः इन वाद्यों की वादन शैली और वर्ण भी अवनद्य वाद्यों के साथ में चले आ रहे हैं।[9]

मार्गी संगीत में प्रयुक्त ताल और वर्ण

मार्ग ताल पद्धति भारतीय ताल प्रणालियों की प्राचीन प्रणाली है। इसका उल्लेख वैदिक संगीत में प्राप्त होता है। वैदिक ग्रंथों में सामवेद में प्राप्त संगीत का जो स्वरूप था वो आगे बढ़ते हुए भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में सामभिन्न संगीत के रूप तक आया। सामभिन्न संगीत से अभिप्राय जो साम संगीत का स्वरूप था उससे भिन्न जो भी संगीत की प्रणाली थी जो उस समय प्रचलित थी। संगीत की यह प्रणाली बहुत ही वैज्ञानिक थी। उसमें किसी भी प्रकार का परिवर्तन संभव नहीं था। यह एक ऐसा कारण था कि कालान्तर में गांधर्व संगीत पद्धति लुप्त हो गयी।

मार्ग शब्द का अर्थ –

मार्ग शब्द का अर्थ है– जिसे खोजकर संस्कारों द्वारा, परिष्कृत कर प्राप्त किया गया अर्थात् जो पूर्व से विद्मान है। उसके तत्वों को, उसके तथ्यों को ठीक उसी रूप में समझा जिस रूप में वो हैं, जिसमें किसी भी प्रकार का जोड़ना या घटाना हमारे द्वारा वर्जित था। मार्गी संगीत ब्रह्मा द्वारा खोजा और शंकर के सामने प्रस्तुत किया तथा भरतादी के द्वारा संसार के सामने लाया गया। मार्गताल प्रणाली के अंतर्गत पाँच प्रकार के ताल मुख्य रूप से पहचाने गये। इनकी संख्या या स्वरूप में कभी कोई परिवर्तन नहीं हुआ। ये ताल हैं–

चच्चतपुटः
चाचपुटः
षटपितापुत्रकः
सम्पक्वेष्टाकः
उद्घट्टः

सर्वप्रथम् हम इन तालों और इनके पटाक्षरों को समझें कि ताल का स्वरूप– जैसे हम आज समझते हैं– वह पहले बहुत भिन्न और व्यापक था। बाहर से देखने पर लगेगा कि यह बहुत ही क्लिष्ठ रूप था परंतु समझने के पश्चात ज्ञात होगा कि यह भी बहुत सहज एवं वैसे ही सुबोधगम्य है जैसे हम आज की ताल प्रणाली को प्रयुक्त करते हैं। संगीत रत्नाकर में कहा गया है–

तालस्तल प्रतिष्ठायामीति धातोर्घञ स्मृता।
गीत वादयं तथा नृत्यं यतस्ताले प्रतिष्ठितम् ।।

Scanned by CamScanner

अर्थात् ताल वह है जो तल धातु में 'घञ' प्रत्यय लगने से उत्पन्न हुआ। यह संस्कृत सम्मत ताल की व्याख्या है। ताल जो गीत वाद्य एवं नृत्य को आधार प्रदान करे। ताल स्वयं किन-किन तत्वों से मिलकर बना है इसके लिए भरतमुनि ने कहा है–

वाद्यं तु यदधनं प्रोक्तं कलापातलयान्वितः।।

अर्थात् वह ताल जो घन वाद्य पर प्रयुक्त होता है, वह ताल, कला, पात एवं लय के संयोग से बनता है। यहाँ प्रयुक्त कला, पात एवं लय ही वह पारिभाषित शब्द हैं जो ताल की रचना करते हैं। पात के अंतर्गत सशब्द-निशब्द क्रिया जिनके द्वारा ताल को अभिव्यक्त करना है जैसे एक काल का परिच्छेद एक विशेष कालखण्ड। उक्त ताल का लक्षण उदाहरण के लिए समझिए– लघु गुरु लघु (।ऽ।) है। संस्कृत साहित्य के छंदशास्त्र के आधार पर इनका मान निर्धारित किया गया जैसे लघु का मान निर्धारित करने के लिए 5 लघु अक्षर काल। इस लघु अक्षर काल को संगीत का लघु बनाने के लिए छंदशास्त्र के 5 लघु अक्षर कालः– (क च ट त प) ये हिन्दी वर्णमाला के प्रत्येक वर्ण की पंक्ति का प्रथम अक्षर है। यह पाँच लघु अक्षर काल के मान के बराबर निरंतर चलने वाली क्रिया के उपरांत ही एक लघु निर्धारित होता है जो संगीत का प्रयोग किया जाने वाला ताल शास्त्र का लघु बनता है। उदाहरण– हिन्दी वर्णमाला की प्रत्येक पंक्ति का पहला अक्षर–

क च ट त प
क च ट त प
क च ट त प
क च ट त प

इसमें प्रत्येक 'क' पर ताल देना है बाकी च ट त प को मूक कर दीजिये सिर्फ हाथों से क्रिया कीजिये। इस प्रकार इस अंतराल से ही संगीत के एक लघु का निर्माण हुआ। लघु का निर्माण होने के पश्चात गुरू, लघु का दोगुना एवं प्लुत, लघु का तीन गुना होता है।

लघुः–
ताली क च ट त प
गुरुः–
ताली क च ट त प
क च ट त प
प्लुतः–
ताली क च ट त प
क च ट त प
क च ट त प

Scanned by CamScanner

इन सभी कालमानों को किसी अवनद्य वाद्य पर वादन न करके हाथों द्वारा क्रियाओं (सशब्द, निशब्द) के द्वारा प्रस्तुत किया जाता था।[10]

देशी ताल पद्धति में प्रयुक्त ताल और वर्ण

साधारण अर्थों में देशी संगीत को ही लोक संगीत माना जाता है किन्तु ऐसा नहीं है। लोक संगीत देशी संगीत का एक प्रकार है। बृहद्देशी में मार्ग और देशी का तथा 'संगीत रत्नाकर' में चारों शब्दों का प्रयोग प्राप्त होता है। देशी संगीत के स्वरूप को स्पष्ट करने की दृष्टि से यह उल्लेख प्रासंगिक है।

अबलाबाल गोपालैः क्षितिपालैर्निजेच्छया।
गीयते यानुरागेण स्वदेशे देशिरूच्यते।।

अर्थात् स्त्री, पुरुष, बच्चे तथा राजा प्रत्येक अपनी-अपनी इच्छा के अनुसार जिसे गाते हैं, तथा देश-देश (स्थान-स्थान) की रुचि के अनुसार प्रयुक्त होने वाला संगीत देशी संगीत है। 'संगीत रत्नाकर' नामक ग्रंथ के तालाध्याय में देशी तालों की संख्या मुख्यतः 120 है तथा इसी ग्रन्थ के प्रबन्धाध्याय में प्रबन्ध भेदों में प्रयुक्त ताल के भेद-प्रभेदों को मिलाकर देशी तालों की संख्या 154 प्राप्त होती है।[11]

देशी ताल का रचना सिद्धान्त

मार्ग ताल में छंद शास्त्र के– क च ट त प प्रचार में थे जो लघु के मान को पाँच अक्षरकाल के द्वारा गिने जाते थे। वहीं देशी संगीत में लघु अब हिन्दी वर्णमाल के– क ख ग घ अं अर्थात पाँच अक्षरकाल या क ख ग घ अर्थात चार अक्षरकाल के द्वारा गिना जाने लगा। ये चार और पाँच मात्र के अक्षर काल के लचीलेपन के कारण सांगीतिक रचनाएँ विलंबित और द्रुत की ओर बढ़ने लगीं।

देशी तालों के वर्णों के प्रयोग का माध्यम

जहाँ मार्गी तालों को प्रस्तुत करने का माध्यम हाँथ की सशब्द निशब्द क्रिया थीं। आगे चलकर यह पद्धति भी समाप्त हो गई। यहाँ हम अभी तक अवनद्य वाद्यों का प्रयोग नहीं कर रहे थे क्योंकि तालों को अंगों के द्वारा ही व्यक्त किया जा सकता था, मात्राओं के द्वारा नहीं। देशी तालों को प्रस्तुत करने के लिए एक माध्यम था "कांस्यताल" जो वर्तमान मंजीरे के सदृश्य घन वाद्य था। इस मंजीरे पर सशब्द-निशब्द क्रिया के सीमित हुए स्वरूप को खाली-भरी के द्वारा घुमाकर या बंद करके दिखाया जाता था। देशी ताल में छोटे से लेकर शिंघ नन्दन जैसे 28 मात्रा तक के बड़े ताल का प्रयोग किया जाता था।

Scanned by CamScanner

देशीताल के वर्णों का वर्तमान स्वरूप

देशी ताल जिनमें अंगों का प्रयोग किया जाता था इन तालों को जब मात्रा के रूप में परिवर्तित किया गया तो इनमें से कई ताल तो आज भी ठीक उसी रूप में प्रयोग में आ रहे हैं जो लगभग 15 वीं शताब्दी में प्रयोग में आते थे जैसे :– चौताल, अर्जुनताल, गजझंपा, एकताल, बसंत ताल, ब्रह्मताल, रुद्र ताल आदि देशी ताल के ही प्रकार हैं।

वर्तमान अवनद्य वाद्यों में वर्ण

वर्तमान अवनद्य वाद्यों की यदि चर्चा की जाये तो सर्वश्रेष्ठ वाद्य के रूप में पखावज और तबला को ही स्थान प्राप्त है। तबला वाद्य ही ऐसा वाद्य है जिसमें सभी अवनद्य वाद्यों के वर्ण, बोली और भाषा को पर्याप्त स्थान दिया गया है। अतः आज तबला वाद्य समस्त अवनद्य वाद्यों का पर्याय बन चुका है। जो तबले में नहीं, वो कहीं नहीं। विश्व के किसी भी अवनद्य वाद्य की भाषा और वर्णों को इस वाद्य पर मिलती-जुलती ध्वनि और अपने बोलों की विपुलता के साथ प्रस्तुत किया जा सकता है। इसी कारण इस वाद्य पर कई लोक और शास्त्रीय वाद्यों की शैली को स्पष्ट रूप से पहचाना जा सकता है। तबले की निर्मिती में कई वाद्यों की झलक देखी जा सकती है। कहा जाता है कि प्रसिद्ध ढोलकिये उस्ताद हुसैन खान ने प्रतिस्पर्धा उपरान्त भवानीदास से हारने के बाद अपने दाहिने हाँथ को काटकर तबले जैसे वाद्य की परिकल्पना की। इस प्रकार ढोलक की शैली तबले पर प्रयोग की गई।[12]

एक मतानुसार पखावज को बीच से काटकर (दो भाग करके भी बोला, तब भी बोला, तबबोला, तबला) तबले की उत्पत्ति मानी जाती है। कई विचारों से पखावज वाद्य का विकसित रूप तबला बना। अतः पखावज के खुले बोल जैसे धागेतिट, गदिगन, आदि तबले की बंदिशों में प्रयोग किये जाते हैं जिनका प्रयोग पूरब बाज के बनारस, लखनऊ और पंजाब आदि घरानों में विशेष रूप से किया जाता है।

उत्तर भारत में पखावज के बाद तबला वाद्य 18 वीं सदी से ही प्रचार में आ गया जब उस्ताद सिद्धार खाँ ने सर्वप्रथम तबले पर आंटे के स्थान पर स्याही का प्रयोग किया तभी से तबले पर पखावज के स्थान पर बंद बाज की नींव रखी गई तथा नवीन घरानों की संकल्पना प्रारम्भ हुई। तभी से तबले के नए-नए बोल प्रचार में आए।[13] तांसा, दुक्कड़ या वे सभी लोकवाद्य जो किनार पर हाथों से या डंडियों से प्रहार करके बजाये जाते हैं उनमें प्रयुक्त वर्ण– नाना, नाडा, और रचनाओं को तबले के पश्चिम बाज के दिल्ली और अजराडा घराना की वादन शैली में प्रयोग किया जा है तो वहीं लोक, सुगम विधाओं की संगत के लिए लग्गी-लड़ी जैसी रचना जो लोक शैली में प्रयोग की जाती है उनमें तबले के इन वर्णों का वादन प्रचुरता से किया जाता है।

जैसेः- धाती धागे तिन किन, धाती धागे धीन गिन, तिट धागे तिन किन, धाती घेन तिन किन

Scanned by CamScanner

प्रत्येक क्षेत्र के लोक संगीत में वहाँ के लोक वाद्यों की वादन शैली का प्रभाव होता है। प्रायः लोक वाद्य तीखी ध्वनि उत्पन्न करने वाले होते हैं चूँकि लोक संगीत के गायन प्रकार भी खुले गले तथा तीव्र ध्वनि प्रधान तथा तार सप्तक के स्वरों में अधिक प्रयोग होती हैं अतः ऐसे वाद्य जिनके वर्णों की ध्वनि तीक्ष्ण, तीव्र और दूर तक सुनाई देने वाली हो इनका प्रयोग इन गायन, वादन व नृत्य के प्रकारों में संगत के लिए किया जाता है।

तंत्र वाद्यों के वर्ण

जिस प्रकार अवनद्य वाद्यों पर बजाये जाने वाले वर्णों को तालों और बोलों के माध्यम से व्यक्त किया जाता है उसी प्रकार तंत्र वाद्यों पर आघात द्वारा कुछ निश्चित वर्णों का प्रयोग किया जाता है। जहाँ अवनद्य वाद्य ताल एवं लय धारण करने के लिए निर्मित हुए हैं। भाषा और भाव के लिए उनकी अपनी शब्दावली है जिनमें स्वर पक्ष का उतना महत्व नहीं है तो वहीं स्वर वाद्य जैसे सितार, सरोद, वीणा आदि पर भाषाई तत्व और भावों को स्वरों के द्वारा प्रदर्शित किया जाता है जिनके लिए शब्दों से साम्यता रखने वाले वर्ण दिर, दा, दारा, दिर, दारदा इत्यादि के द्वारा विभिन्न निकास विधियों से रागों और धुनों का प्रस्तुतिकरण संभव होता है।[14]

कथक नृत्य में प्रयुक्त वर्ण

कथक मे प्रयुक्त वर्णों में ततकार या पैरों के काम को ताल-वाद्यों के आधार पर विकसित किया गया है। जैसे तबले की तालीम में तीनताल का ठेका सिखाने पर कायदा पल्टा, गत, आदि चीजें क्रम से सिखाई जाती हैं, ठीक उसी तरह कथक में सर्वप्रथम त्रिताल के ततकार :- "ता थेई थेई तत आ थेई थेई तत" सिखाये जाते हैं। ततकार का मूल वर्णन "तत" है। इसके वजन का ताल का ठेका, अवनद्य वाद्य के तीन ताल का ठेका हो सकता है।

कथक के बोलः— ता थेई थेई तत । आ थेई थेई तत

तबले के बोलः— धा धि धि धा । धा धि धि धा

इन मूल बोलों के अतिरिक्त "तिगदा, दिगदिग, थेई, थरीकिट, धिलांग, थुंगा आदि वर्ण ही नृत्य में प्रयोग किये जाते हैं। चूँकि कत्थक नृत्य में अवनद्य वाद्यों के ही खास-खास बोलों का पैरों से अभ्यास किया जाता है। किसी प्रकार के स्वर विस्तार की गुंजाईश न होने के कारण अवनद्य वाद्यों के वर्ण जैसे— धाकिटतक, धुमकिटतक, धोगेतिट, घिडान आदि तबला-पखावज वाद्यों के अलग-अलग बोल की निकासी पैर या पगस्थली पर अलग-अलग पदाघात करने से होती है।[15]

निष्कर्ष

अवनद्य वाद्यों का जन्म और विकास संगीत को आधार प्रदान करने के उद्देश्य से किया गया है। इसी कारण प्राचीन काल से लेकर वर्तमान तक की समस्त शैलियों को आधार देने के

Scanned by CamScanner

लिए समय-समय पर इन वर्णों की निर्मिती होती रही है। 19 वीं सदी के उत्तरार्ध और 20 वीं सदी के पूर्वार्ध में पंडित विष्णु नारायण भातखंडे जी और पंडित विष्णु दिगंबर पलुश्कर जी ने एक अभूतपूर्व कार्य किया। इन्होंने घरानेदार संगीत की बंदिशों को इन वर्णों के माध्यम से लुप्त होते संगीत को लिपिबद्ध करने का महान कार्य किया जिसके कारण भारतीय शास्त्रीय संगीत का लेखन प्रारंभ हो गया। बंदिशों का वर्णों के माध्यम से संरक्षण किया जाने लगा साथ ही नए साहित्य की भी निर्मिति आरंभ हो गई।[16] अवनद्य वाद्य की भाषा आज से लगभग 20-25 वर्ष पूर्व तक भाव प्रधान होने के अलावा भाषा की दृष्टि से उतनी प्रभावशाली प्रतीत नहीं होती थी जितनी संगीत की अन्य विधाएँ। किन्तु वर्तमान में जितना विकास तबला और अन्य अवनद्य वाद्यों ने किया शायद अन्य वाद्यों ने नहीं किया। रचनात्मक प्रयोगों से भाषाहीन प्रतीत होने वाले वर्ण अब कल्पनाशीलता के साथ अभूतपूर्व वृद्धि कर चुकी हैं। अवनद्य वाद्यों पर किसी दृष्टांत, कविताओं, सामाजिक और धार्मिक प्रभाव भी परिलक्षित दिखाई देता है। कई घरानों में भाषा के द्वारा स्तुति पाठ, विभिन्न प्रकार की रचनाओं जैसे गणेश परन, शिव परन इत्यादि रचनाओं में इनके स्वरूपों को वर्णों के माध्यम से स्पष्ट किया जा रहा है।

असिस्टेण्ट प्रोफेसर
संगीत विभाग
डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय,
सागर (म.प्र.)

सन्दर्भ :

1 सेन अरुण कुमार, भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचन, मध्य प्रदेश हिंदी ग्रन्थ अकादमी, पृष्ठ 177
2 चिस्ती आर एस, तबला संचयन कनिष्क पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 40, 41
3 कौर भगवंत, परंपरागत हिन्दुस्तानी सैद्धांतिक संगीत, कनिष्क पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 62
4 वही, पृष्ठ 67
5 सिंह डॉ. लावण्या कीर्ति, भारतीय संगीत ग्रंथ, कनिष्क प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 16
6 भरत नाट्यशास्त्र 34/39
7 वही, पृष्ठ 24
8 वही, पृष्ठ 153
9 सुभद्रा चौधरी, संगीत संचयन
10 राम डॉ. सुदर्शन, तबले के घराने, वादन शैलियाँ एवं बंदिशें, पृष्ठ 23
11 चौधरी डॉ. सुभद्रा ,भारतीय संगीत में ताल और रूप विधान, कृष्ण ब्रदर्स अजमेर
12 राम डॉ. सुदर्शन, तबले के घराने, वादन शैलियाँ एवं बंदिशें, पृष्ठ 19
13 चिस्ती आर. एस. तबला संचयन, कनिष्क पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 58
14 जाफरखानी बाज, उस्ताद हलीम जाफर खाँ
15 डॉ. प्रेम दुबे, कथक नृत्य परम्परा, पंचशील प्रकाशन, इलाहाबाद
16 चिस्ती आर एस, तबला संचयन, कनिष्क पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 61

Scanned by CamScanner